पटना उच्च न्यायालय में

पूर्ण पीठ

1962 का एम.ए. संख्या 46

निर्णय लिया गयाः 07.02.1968

याचिकाकर्ता: **फर्म भूदरमल चंडी प्रसाद**

बनाम

उत्तरदाताः बिहार राज्य

संदर्भित मामलेः

i. ए. आई. आर. 1943 एम.ए.डी 698 (गद्देम चिन्ना वेंकट राव बनाम। कोरल्ला सत्यनारायणमूर्ति);

ii.ए. आई. आर. 1953 पटना 346 (दुंदबहादुर सिंह बनाम दुर्गा प्रसाद सिंह)

iii.ए. आई. आर. 1918 कैल 227 (प्राण कृष्ण दास बनाम प्रताप चंद्र दलाई);

iv. ए. आई. आर. 1927 मैड 801 (श्री रंगा थाथाचारियार बनाम श्रीनिवास थाथाचारियार)

v.ए. आई. आर. 1931 मैड 513 (गेंगामा नाइक बनाम एन एल भी आर वीरप्पा चट्टी)

vi. ए. आई. आर. 1925 कैल 94 (शैलेश चंद्र गुप्ता बनाम बोचाई गोप)

vii. ए. आई. आर. 1929 लाह 68 (किशन किशोर बनाम दीन मुहम्मद)

viii।ए. आई. आर. 1959 पुन 515 (एम. एस.टी मेवा बनाम अमर सिंह)

ix.ए. आई. आर. 1932 पैट 134 (गोकुल कृष्ण बनर्जी बनाम राज्य सचिव)

x. ए. आई. आर. 1949 पैट 79 (हरदी राम पांडे बनाम काली प्रसाद सिंह)

xi.ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 1349 (इटाखूली टी एस्टेट का प्रबंधन बनाम इसके कर्मचारी)

xii.ए. आई. आर. 1920 पी. सी. 139 (रामचंद्र देव गारू बनाम चैतन्य साहू)

xiii.ए. आई. आर. 1935 पी. सी. 85 (मकबुल अहमद बनाम ओंकार प्रताप नारायण सिंह)

xiv. ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 16 (यशवंत देवराव बनाम वालचंद रामचंद)

xv. ए. आई. आर. 1940 लाह 75 (कुंडो मल बनाम दौलत राम विद्या प्रकाश)

xvi. ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 1165 (बनारसी दास बनाम कांशीराम)

xvii.ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1336 (महिंद्रा लैंड एंड बिल्डिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम.भूतनाथ बनर्जी)

सी. पी. सी. के आदेश 41 नियम 22 (1) की व्याख्या-जब मुकदमे के दौरान दबाव नहीं डाला जाता है तो अपील में सीमा की याचिका-अभिव्यक्ति की व्याख्या "डिक्री का समर्थन करती है" जैसा कि आदेश 41 नियम 22 में कहा गया है-क्या अभिव्यक्ति 'डिक्री का समर्थन करती है' आदेश 41, नियम 22, सी. पी. सी. में उपयोग किए गए प्रतिवादी के खिलाफ तय किए गए किसी भी आधार पर एक ऐसा आधार शामिल है जिसका डिक्री की शुद्धता को चुनौती देने का प्रभाव था?

(पैरा नं. 1 [2])-सी. पी. सी. के आदेश **XX** नियम 5 के तहत, निचली अदालत प्रत्येक मुद्दे पर अपना निर्णय देने के लिए बाध्य थी, और इसलिए, जब प्रतिवादी के वकील ने कहा कि वह इस मुद्दे को नहीं उठाएगा, तो अदालत को स्पष्ट शब्दों में लिखना चाहिए था कि मुद्दा सं.2(सीमा के संबंध में) वादी के पक्ष में निर्णय लिया गया था क्योंकि इस पर प्रतिवादी द्वारा दबाव नहीं डाला गया था (पैरा नं। 5)-एक डिक्री का अर्थ, आम तौर पर, निचली अदालत द्वारा पारित पूरी डिक्री होगा, लेकिन जहां डिक्री समग्र प्रकृति की है, आंशिक रूप से वादी के पक्ष में और आंशिक रूप से प्रतिवादी के पक्ष में है, तो कभी-कभी "डिक्री" शब्द का अर्थ निकालने में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं (पैरा नं। 6)-प्रत्यर्थी को डिक्री के उस हिस्से पर हमला करने से रोका जाएगा जो उसके खिलाफ निचली अदालत द्वारा अपील या प्रति-आपत्ति दायर नहीं करने में उसके अपने आचरण से पारित किया गया था (पैरा नं। 10)।

आयोजित-प्रतिवादी प्रत्यर्थी सी. पी. सी. के आदेश एक्स. एल. आई. नियम 22 (1) के आधार पर सीमा की याचिका उठा सकता है, जहां मुकदमे में सीमा की याचिका पर जोर नहीं दिया गया था, बल्कि केवल उस डिक्री का समर्थन करने के लिए जो उसके पक्ष में है-आदेश एक्स. एल. आई. नियम 22 (1), सी. पी. सी. में "डिक्री" शब्द का अर्थ निचली

अदालत की पूरी डिक्री नहीं है, बल्कि डिक्री का केवल वह हिस्सा है जो अपील के तहत है। प्रतिवादी/प्रत्यर्थी का निचली अदालत की डिक्री के उस हिस्से को चुनौती देने का अधिकार जो उसके खिलाफ है, अपील या प्रति-आपत्ति दायर करने में उसकी विफलता के कारण बाधित किया जा सकता है, और इस प्रकार डिक्री के उस हिस्से को चुनौती देने का सवाल आदेश **XLI** नियम 22 (1) [पैरा नं. 13] नहीं उद्भूत होता है ।

पटना उच्च न्यायालय में

पूर्ण पीठ

1962 का एम.ए. संख्या 46

निर्णय लिया गयाः 07.02.1968

याचिकाकर्ता: **फर्म भूदरमल चंडी प्रसाद**

बनाम

उत्तरदाताः **बिहार राज्य**

माननीय न्यायाधीशगण/कोरमः

आर.एल. नरसिम्हम, मुख्य न्यायाधीश, उदय सिन्हा और तारकेश्वर नाथ, न्यायमूर्तिगण

सलाहकार/अधिवक्तागण:

अपीलार्थी/याचिकाकर्ता/वादी के लिएः जे.सी. सिन्हा और एस. मुस्तफी

उत्तरदाताओं/प्रतिवादी के लिएः लाल नारायण सिन्हा, महाधिवक्ता, एस.सरवर अली, अतिरिक्त सरकार के सलाहकार और लक्ष्मण सरन सिन्हा

निर्णय

आर. एल. नरसिम्हम, मुख्य न्यायाधीश

1. उच्च न्यायालय के नियमों के भाग **II** के अध्याय **V** के नियम 3 के तहत इस न्यायालय की एक खंड पीठ (चौधरी और अनवर अहमद, न्यायमूर्तिगण) द्वारा कानून के निम्नलिखित दो प्रश्नों को पूर्ण पीठ को भेजा गया हैः

> **1.** जहां बचाव में सीमा की याचिका ली गई थी, लेकिन मुकदमे में दबाव नहीं डाला गया था, और वादी ने प्रतिवादी के खिलाफ केवल एक आंशिक डिक्री प्राप्त की थी और आगे के दावे के लिए अपीलीय न्यायालय में अपील को प्राथमिकता दी थी, क्या प्रतिवादी प्रतिवादी, जो उसके खिलाफ पारित डिक्री से कोई अपील की प्राथमिकता नही दी गई, आदेश 41, नियम 22, सी. पी. सी. के तहत अपील में यह सवाल उठा सकता है कि मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित था?
>
> **2.** क्या आदेश 41, नियम 22, सी. पी. सी. में उनके खिलाफ तय किए गए किसी भी आधार पर 'डिक्री का समर्थन' अभिव्यक्ति में एक ऐसा आधार शामिल है जिसका प्रभाव डिक्री की शुद्धता को चुनौती देने का था?

अपीलार्थी ठेकेदारों की एक फर्म है, जिसने 12 फरवरी, 1952 को प्रतिवादी (बिहार राज्य) के साथ एक अनुबंध किया था, जिसमें कुल 1,42,600/- रुपये की कीमत पर ईंटों की आपूर्ति करने पर सहमति व्यक्त की गई थी। यह आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी नियंत्रित दरों पर कोयले के लिए परमिट की आपूर्ति करने के लिए सहमत हो गया था, लेकिन मई 1952 में 94 टन और जून 1962 में 119 टन कोयले के लिए परमिट की आपूर्ति करने के बाद,

प्रतिवादी अनुबंध की अवधि के अपने हिस्से को पूरा करने में विफल रहा, जिसके परिणामस्वरूप वादी केवल 5,69,912 ईंटों की आपूर्ति कर सकता था। प्रतिवादी के 27 अगस्त, 1952 के एक पत्र में निहित निर्देशों पर ईंटों का आगे का निर्माण रोक दिया गया था। बाद में पक्षों के बीच पत्राचार हुआ, और अंततः, वादी ने 2 अगस्त, 1958 को रु. 26,969/29 रुपये का जुर्माना लगाते हुए ब्याज के अलावा अनुबंध के उल्लंघन के लिए 7,821/8- रूपये हर्जाने के रूप अपील के तहत मुकदमा लाया।

2. महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक मुद्दा संख्या- 2, जो इस प्रकार थाः

> क्या वादी का दावा सीमितता से वर्जित है?

निचली अदालत में मुकदमे की सुनवाई, अर्थात, भागलपुर के प्रथम अतिरिक्त अवर न्यायाधीश की अदालत 4 सितंबर, 1961 को पूरी हुई और प्रतिवादी की ओर से दलीलें 5 सितंबर को सुनी गईं। वादी की ओर से दलीलें 6 सितंबर को आंशिक रूप से सुनी गईं। अगले दिन, अर्थात, 7 सितंबर को, प्रतिवादी की ओर से पेश हुए विद्वान सरकारी वकील ने सीमा के आधार पर मुकदमे पर आपत्ति सहित कई बिंदुओं को छोड़ दिया। विद्वान अवर न्यायाधीश ने उस दिन आदेश पत्र में निम्नलिखित टिप्पणी कीः

> प्रतिवादी के विद्वान वकील ने भी अपने बचाव पर जोर नहीं दिया है कि दावा सीमा द्वारा वर्जित है।

इसके बाद दलीलें फिर से शुरू की गईं और 21 सितंबर, 1961 को फैसला सुनाया गया और वादी को 3300/2/2 रुपये केवल ब्याज के साथ का फरमान दिया गया जहां तक मुद्दे सं.2 विद्वान अवर न्यायाधीश ने निर्णय में उल्लेख किया कि इसे उठाया नही गया था। इसके लिए अनुरोध नही किया गया था। जहां तक मुद्दे नं. 2 विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने निर्णय में उल्लेख किया कि इसे दबाया नहीं गया था।

3. वादी ने डिक्री के उस हिस्से के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील दायर की जो इसके खिलाफ था लेकिन दावे को घटाकर 13,159/12 7 रुपये कर दिया गया। हालाँकि, बिहार राज्य ने निचली अदालत की डिक्री के उस हिस्से के खिलाफ अपील या प्रति-अपील या प्रति-आपत्ति दायर नहीं की, जिसमें वादी के दावे को 3300/2/2 रुपये की सीमा तक ब्याज के साथ अनुमति दी गई थी। लेकिन, जब खंडपीठ के समक्ष सुनवाई के लिए अपील आई, तो बिहार राज्य के वकील आदेश **XLI** नियम 22 (1), सिविल प्रक्रिया संहिता पर भरोसा करते हुए सीमा का सवाल उठाना चाहते थे। हालाँकि, अपीलार्थी के वकील ने इस आधार पर आपत्ति जताई कि यदि उस अपीलीय चरण में सीमा के प्रतिबंध को लेने की अनुमति दी जाती है, तो यह पूरे मुकदमे के लिए घातक हो सकता है, और वह आदेश **XLI** नियम 22 (1) उस उद्देश्य के लिए उपलब्ध नहीं होगा। बिहार राज्य के वकील ने (1) गद्देम चिन्ना वेंकट राव बनाम कोरल्ला सत्यनारायणमूर्ति (एम. ए. एन. यू./टी. एन./0137/1943:ए. आई. आर.

1943 मद 698) पर भरोसा किया, लेकिन विद्वत खंड पीठ उसमें लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता से संतुष्ट नहीं थी, और इसलिए कानून के दो प्रश्नों को पूर्ण पीठ को भेज दिया।

4. आदेश **XLI** नियम 22 (1) को अब उद्धृत किया जा सकता हैः

> कोई भी प्रत्यर्थी, भले ही उसने डिक्री के किसी भी हिस्से से अपील नहीं की हो, न केवल नीचे दिए गए न्यायालय में उसके खिलाफ तय किए गए किसी भी आधार पर डिक्री का समर्थन कर सकता है, बल्कि उस डिक्री पर कोई भी प्रति-आपत्ति ले सकता है जिसे वह अपील के माध्यम से ले सकता था, बशर्ते कि उसने अपील की सुनवाई के लिए निर्धारित दिन की सेवा की तारीख से एक महीने के भीतर या ऐसे आगे के समय के भीतर अपीलीय न्यायालय में ऐसी आपत्ति दायर की हो, जिसे अपीलीय न्यायालय अनुमति देने के लिए उचित समझे।

इस संदर्भ के उद्देश्य के लिए उक्त उप-नियम में महत्वपूर्ण शब्द हैं (1) "उसके खिलाफ तय किए गए आधार" और (2) "डिक्री का समर्थन"। यह आग्रह किया गया था कि चूंकि सीमा के मुद्दे पर जोर नहीं दिया गया था, इसलिए उस मुद्दे पर निचली अदालत द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया गया था, और इसके परिणामस्वरूप, नियम 22 के उप-नियम (1) का कोई अनुप्रयोग नहीं है। दूसरा, यह तर्क दिया गया कि "डिक्री का समर्थन" शब्दों में "डिक्री" अभिव्यक्ति का अर्थ है निचली अदालत द्वारा पारित पूरी डिक्री, और यह कि, सीमा की याचिका

को उठाकर, प्रतिवादी को डिक्री के उस हिस्से का समर्थन करने के लिए नहीं माना जा सकता है जो उसके खिलाफ था। यह आग्रह किया गया था कि सीमा की यह याचिका, यदि स्वीकार की जाती है, तो डिक्री को पूरी तरह से नष्ट कर देगा, और इसके परिणामस्वरूप मुकदमा खारिज हो जाएगा। चूंकि प्रतिवादी ने अपील या प्रति-आपत्ति दायर नहीं की थी, इसलिए दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश **XLI** नियम 22 (1) पर भरोसा करते हुए प्रतिवादी के रूप में ऐसी याचिका को लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

5. पहले बिंदु पर अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है। सीमा का मुद्दा निचली अदालत में उठाए गए महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक था, और दोनों पक्षों ने इस मुद्दे और अन्य मुद्दों के संबंध में अपने सभी उपलब्ध साक्ष्य प्रस्तुत किए। यह बहस के चरण में ही था जब प्रतिवादी के वकील ने अपनी दलीलें पूरी कर ली थीं और वादी के वकील उसी का जवाब दे रहे थे कि प्रतिवादी के वकील ने कहा कि वह इस सीमा के मुद्दे को नहीं उठाएंगे। आदेश **XX** नियम 5, दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत, न्यायालय प्रत्येक मुद्दे पर अपना निर्णय देने के लिए बाध्य था, और इसलिए, जब प्रतिवादी के वकील ने कहा कि वह इस मुद्दे को नहीं उठाएगा, तो न्यायालय को स्पष्ट शब्दों में लिखना चाहिए था कि मुद्दा संख्या- 2 का फैसला वादी के पक्ष में किया गया क्योंकि प्रतिवादी द्वारा इस पर दबाव नहीं डाला गया था। हालाँकि, न्यायालय ने केवल निर्णय में लिखा कि 'दबाव नहीं डाला गया', लेकिन इस संदर्भ में, आदेश **XX** नियम 5 के प्रावधानों

को ध्यान में रखते हुए और जिस विलंबित चरण में प्रतिवादी द्वारा इस मुद्दे को छोड़ दिया गया था, न्यायालय के आदेश को वादी के पक्ष में निर्णय के रूप में माना जाना चाहिए। जैसा कि (2) दुंदबहादुर सिंह बनाम दुर्गा प्रसाद सिंह (एम. ए. एन. यू./बी. एच./0124/1953 ए. आई. आर. 1953 पटना 346, पृष्ठ 348) में बताया गया है।

> तर्क के दौरान वकील द्वारा दी गई रियायत साक्ष्य के प्रभाव के बारे में उसकी राय का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने महसूस किया कि उनके पक्ष के साक्ष्य उनके मामले को स्थापित नहीं करते हैं और उनके मुवक्किलों के लिए बेहतर होगा कि वे इस बात को स्वीकार करें क्योंकि सबूतों की मेरी समीक्षा से पता चलेगा कि उनकी राय अनुचित नहीं थी। इस रियायत का उद्देश्य उनके मुवक्किलों को मामले के बाद के चरण में बाध्य करना और एक अन्य वकील को, जो साक्ष्य के बारे में एक अलग दृष्टिकोण ले सकता है, अपील में बिंदु को फिर से खोलने से रोकना नहीं था।

इस रियायत के कारण, निचली अदालत शायद सीमा के सवाल पर साक्ष्य पर चर्चा नहीं करने के लिए उचित थी, लेकिन यह कानून और तथ्यों के अपने दृष्टिकोण के अनुसार एक या दूसरे पक्ष के पक्ष में मुद्दे का फैसला करने के लिए बाध्य थी। (3) प्राण कृष्ण दास बनाम प्रताप चंद्र दलाई (एम. ए. एन. यू./डब्ल्यू. बी./0411/1917:ए. आई. आर. 1918 कैल 227) पर भरोसा किया

गया, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलीय स्तर पर नए सिरे से उठाए गए एक बिंदु, जो निचली अदालत में मुद्दे में नहीं था, को आदेश एक्स. एल. आई. **XLI** नियम 22 (1), दीवानी प्रक्रिया संहिता के उद्देश्य के लिए "तय" बिंदु नहीं माना जा सकता था। हालाँकि, वह मामला स्पष्ट रूप से अलग करने योग्य है क्योंकि इस मुद्दे पर कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था और यह निर्णय का विषय नहीं था। हालाँकि, यहाँ तथ्य कुछ और ही हैं। इसलिए, मेरा मानना है कि सीमा का मुद्दा प्रतिवादी के खिलाफ निचली अदालत द्वारा तय किया गया होना चाहिए।

6. दूसरे बिंदु की ओर मुड़ते हुए, मैं नियम 22 (1) के उन हिस्सों को उद्धृत कर सकता हूं जहां "डिक्री" शब्द अन्य शब्दों के साथ आता हैः(1) "यद्यपि उसने डिक्री के किसी भी भाग से अपील नहीं की होगी "(2)" नीचे दिए गए न्यायालय में उसके खिलाफ तय किए गए किसी भी आधार पर डिक्री का समर्थन करता है ", और (3)" उस डिक्री पर कोई प्रति-आपत्ति लेता है जिसे वह अपील के माध्यम से ले सकता था। "एक डिक्री का अर्थ, आम तौर पर, निचली अदालत द्वारा पारित पूरी डिक्री होता है, लेकिन जहां डिक्री एक समग्र प्रकृति की होती है, आंशिक रूप से वादी के पक्ष में और आंशिक रूप से प्रतिवादी के पक्ष में होती है, तो कभी-कभी "डिक्री" शब्द का अर्थ निकालने में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। संदर्भ, विशेष रूप से साथ में दिए गए शब्द, सबसे अच्छा मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, और उक्त शब्द का अर्थ समग्र डिक्री के उस

हिस्से के रूप में करना होगा जो या तो अपीलार्थी या संदर्भ के अनुसार प्रतिवादी के पक्ष में है। इस प्रकार, नियम 22 (1) में आने वाले शब्दों "हालांकि उन्होंने डिक्री के किसी भी हिस्से से अपील नहीं की होगी", का अर्थ इस तरह से लगाया जाना चाहिए जो डिक्री के उस हिस्से पर लागू होता है जो प्रतिवादी के खिलाफ है। इसी तरह, "उस डिक्री पर कोई भी प्रति-आपत्ति लें जिसे वह अपील के माध्यम से ले सकता था" शब्दों में, निर्दिष्ट डिक्री डिक्री का वह हिस्सा होना चाहिए जो प्रतिवादी के खिलाफ है क्योंकि योग्य शब्द "जो वह अपील के माध्यम से ले सकता था" से पता चलता है कि यह संभवतः पूरी डिक्री नहीं हो सकती थी, जिसका एक हिस्सा उसके पक्ष में है। उसी तर्क पर, "नीचे दिए गए न्यायालय में उसके खिलाफ तय किए गए किसी भी आधार पर डिक्री का समर्थन" शब्दों का इस तरह से अर्थ लगाया जाना चाहिए कि वे निचली अदालत की डिक्री के उस हिस्से को संदर्भित करते हैं जो प्रतिवादी के पक्ष में है, अन्यथा "समर्थन" शब्द का पूरा अर्थ नहीं दिया जा सकता है क्योंकि एक प्रतिवादी संभवतः डिक्री के उस हिस्से का समर्थन नहीं कर सकता है जो उसके खिलाफ पारित किया गया है। उक्त भाग में आने वाले "डिक्री" शब्द का अर्थ लगाना संदर्भ के लिए प्रतिकूल होगा, जिसका अर्थ है निचली अदालत का पूरा निर्णय, जैसा कि कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा किया गया है। इसलिए, मैं सम्मान के साथ, मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले में लिए गए उस दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हूं, जो (1) ए. आई. आर. 1913 मैड 698 में रिपोर्ट किया गया था, जिसमें (4) श्री रंगा

थाथाचारियार वी. श्रीनिवास थाथाचारियार (एम. ए. एन. यू./टी. एन./0074/1927 में लिए गए विपरीत दृष्टिकोण को खारिज कर दिया गया थाःए. आई. आर. 1927 मैड 801)। पहले के मद्रास निर्णय (4) (एम. ए. एन. यू./टी. एन./0074/1927:ए. आई. आर. 1927 मद 801) में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रत्यर्थी, उप-नियम के आधार पर, उन आधारों को नहीं ले सकता है जो उसके खिलाफ नीचे की अदालत में तय किए गए थे और जिनके संबंध में उसने कोई अपील या आपत्ति ज्ञापन दायर नहीं किया है। इस दृष्टिकोण का अनुसरण (5) गेंगामा नाइक वी. एन.एल.वी.आर. वीरप्पा चट्टी (एमएएनयू/टीएन/0233/1930:ए. आई. आर. 1931 मद 513), जहाँ पृष्ठ 516 पर यह कहा गया था कि अपीलीय स्तर पर प्रत्यर्थी द्वारा लिया गया कोई भी आधार, जो उसके अनुसार, निचली अदालत द्वारा उसके पक्ष में तय किया जाना चाहिए था, "डिक्री के समर्थन में" आधार नहीं होगा, बल्कि "डिक्री पर हमला करने" का आधार होगा। यह विचार कई अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा भी लिया गया है। इस प्रकार, (6) में शैलेश चंद्र गुहा बनाम बोचाई गोप (**MANU/WB**/0123/1924:ए. आई. आर. 1925 कैल 94) में, यह इंगित किया गया था कि यदि इस तरह के आधार को अपीलीय स्तर पर लेने की अनुमति दी जाती है, तो यह, यदि कायम रहता है, तो पूरे डिक्री को अमान्य कर देगा। (7) किशन किशोर बनाम दीन मुहम्मद (एम. ए. एन. यू./एल. ए./0134/1928:ए. आई. आर. 1929 लाह 68) भी, इस धारणा पर एक समान विचार रखा गया था कि ऐसा आधार डिक्री पर हमला करेगा और डिक्री का

समर्थन नहीं करेगा। (8) एम. एस. टी. मेवा बनाम अमर सिंह (**MANU/PH**/0158/1959:ए. आई. आर. 1959 पुन 515) में, एक समान दृष्टिकोण लिया गया था, और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक आपत्ति, जो मामले के मूल तक जाती है और जिसे यदि बरकरार रखा जाता है, तो अनिवार्य रूप से वाद विफल हो जाएगा, प्रतिवादी द्वारा आदेश **XLI** नियम 22 (1), दीवानी प्रक्रिया संहिता के आधार पर अपीलीय स्तर पर नहीं लिया जा सकता है।

7. इन सभी निर्णयों में, ऐसा प्रतीत होता है कि आदेश **XLI** नियम 22 (1), दीवानी प्रक्रिया संहिता में आने वाले "डिक्री का समर्थन करने वाले" शब्दों में "डिक्री" शब्द का अर्थ पूरी तरह से निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री है। हालाँकि, यदि इस शब्द का अर्थ अपील के तहत डिक्री के रूप में किया जाता है (जैसा कि पहले ही चर्चा की गई है), तो इस धारणा पर आधारित तर्क कि प्रतिवादी डिक्री का समर्थन नहीं कर रहा था, लेकिन अपीलीय स्तर पर इस तरह की प्रस्तुति को उठाकर डिक्री पर हमला कर रहा था, अब उपलब्ध नहीं होगा।

8. (4) श्री रंगा थाथाचारियार बनाम श्रीनिवास थाथाचारियार (एम. ए. एन. यू./टी. एन./0074/1927 में निर्णय की सटीकताःए. आई. आर. 1927-801) में निर्णय की शुद्धता को (9) गोकुल कृष्ण बनर्जी बनाम राज्य सचिव (एम. ए. एन. यू./बी. एच./0072/1931 में संदेह थाःए. आई. आर. 1932 पैट 134)।

अपीलार्थी के वकील ने (10) हरदी राम पांडे बनाम काली प्रसाद सिंह (एम. ए. एन. यू./बी. एच./0218/1948 पर भरोसा कियाःए. आई. आर. 1949 पैट 79), लेकिन उस निर्णय में, पटना उच्च न्यायालय की पूर्व खंड पीठ ने (9) गोकुल कृष्ण बनर्जी बनाम राज्य सचिव (एम. ए. एन. यू./बी. एच./0072/1931:ए. आई. आर. 1932 पैट 134) और मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने (1) गद्देम चिन्ना वेंकट राव बनाम कोरल्ला सत्यनारायणमूर्ति (एम. ए. एन. यू./टी. एन./0137/1943:ए. आई. आर. 1943 मैड 698) पर ध्यान नहीं दिया गया है।

9. आदेश **XLI** नियम 22 (1), दीवानी प्रक्रिया संहिता की व्याख्या के बारे में न्यायिक राय में इस तीखे टकराव को उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपतियों ने (11) इटाखूली टी एस्टेट का प्रबंधन बनाम इसके श्रमिकों (एम. ए. एन. यू./एस. सी./0330/1960:ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 1349), लेकिन उनके अधिपतियों ने इस प्रश्न का निर्णय नहीं किया, हालांकि उन्होंने इस धारणा पर उस मामले का निपटारा किया कि मद्रास उच्च न्यायालय की बाद की पूर्ण पीठ ने (1) गद्देम चिन्ना वेंकट राव बनाम कोरल्ला सत्यनारायणमूर्ति (एम. ए. एन. यू./टी. एन./0137/1943:ए. आई. आर. 1943 मैड 698) ने सही कानून निर्धारित किया।

10. ऊपर उल्लिखित कुछ निर्णयों में लिया गया विपरीत दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित प्रतीत होता है कि यदि प्रतिवादी को निचली अदालत द्वारा उसके

खिलाफ तय किए गए आधार के आधार पर अपील के तहत डिक्री के उस हिस्से का समर्थन करने की अनुमति दी जाती है, तो वह पूरी डिक्री को अमान्य कर देगा और मुकदमे को खारिज कर देगा। यह बुनियादी धारणा, बड़े सम्मान के साथ, गलत है। अपीलीय स्तर पर इस बात पर विचार करना कुछ हद तक काल्पनिक होगा कि यदि प्रतिवादी द्वारा उठाए गए उपरोक्त आधार को निचली अदालत द्वारा स्वीकार कर लिया गया होता तो क्या परिणाम होता। यह हो सकता है कि परिणाम मुकदमे को पूरी तरह से खारिज करना होता, लेकिन इसका जरूरी मतलब यह नहीं है कि केवल अपीलीय स्तर पर इस बिंदु को उठाने से, प्रतिवादी निश्चित रूप से निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री को पूरी तरह से अमान्य कर देगा। सामान्य परिस्थितियों में, डिक्री के उस हिस्से के खिलाफ अपील दायर करने में विफलता के कारण जो उसके खिलाफ है और वादी की अपील में प्रति-आपत्ति दर्ज करने में चूक के कारण, उसने डिक्री के उस हिस्से को अंतिम बना दिया है। यह अंतिमता अपीलीय चरण में उनके तर्क के प्रभाव के बावजूद है, और पूरी तरह से एक अलग सिद्धांत द्वारा लाई गई है। प्रत्यर्थी के विद्वान महाधिवक्ता ने आदेश **XLI** नियम 33, दीवानी प्रक्रिया संहिता पर भरोसा करते हुए आग्रह किया कि, उस नियम के तहत, न्यायालय के पास, उपरोक्त परिस्थितियों में, डिक्री को पूरी तरह से रद्द करने की शक्ति हो सकती है। यहाँ, हम आदेश **XLI** नियम 33 के अनुप्रयोग से संबंधित नहीं हैं क्योंकि खंड पीठ द्वारा हमें संदर्भित कानून के दो प्रश्न उस नियम से संबंधित नहीं हैं। मैं इस सवाल को खुला छोड़ दूंगा कि क्या आदेश **XLI** नियम 33 संभवतः इस

मामले के तथ्यों पर लागू हो सकता है, लेकिन जहां तक आदेश **XLI** नियम 22 (1) का संबंध है, प्रतिवादी को डिक्री के उस हिस्से पर हमला करने से रोका जाएगा जो निचली अदालत द्वारा अपील या प्रति-आपत्ति दायर नहीं करने में अपने स्वयं के आचरण से उसके खिलाफ पारित किया गया था। लेकिन, इस निष्कर्ष से, यह आवश्यक नहीं है कि वह डिक्री के उस हिस्से का "समर्थन" नहीं कर सकता है जो उसके खिलाफ तय किए गए आधार के आधार पर उसके पक्ष में पारित किया गया था, अगर वह वादी की अपील को खारिज करने के लिए पर्याप्त है।

11. उपरोक्त तर्क अधिक बल के साथ लागू होता है जहां लिया गया आधार सीमा के संबंध में है। सीमा अधिनियम की धारा 3 स्पष्ट रूप से न्यायालय को किसी मुकदमे को खारिज करने का निर्देश देती है यदि वह समय की पाबंदी है, भले ही सीमा को बचाव के रूप में स्थापित नहीं किया गया हो। इस शक्ति का प्रयोग न केवल निचली अदालत द्वारा बल्कि अपीलीय अदालत द्वारा भी किया जाना आवश्यक है, किसी पक्ष द्वारा सीमा की याचिका को माफ करने से रोक नहीं लगाई जा सकती है। (12) रामचंद्र देव गारू बनाम चैतन साहू (एम. ए. एन. यू./पी. आर./0085/1920:ए. आई. आर. 1920 पी. सी. 139) में, उनके अधिपतियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि एक पक्ष द्वारा रियायत भी कि दावा सीमा द्वारा वर्जित नहीं था, उनके लॉर्डशिप्स को सीमा अधिनियम से जुड़ी शर्तों की जांच करने और समय द्वारा दावा वर्जित होने पर मुकदमे को लागत के

साथ खारिज करने से नहीं रोकेगा। हालाँकि, उन्होंने इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उस मामले में रियायत का परिणाम विचारण अदालत के डिक्री को एक सहमति डिक्री बनाने का था, जिसके खिलाफ कोई अपील नहीं थी। इसलिए, उन मामलों को छोड़कर जहां सीमा के प्रश्न पर रियायत के आधार पर, निचली अदालत की डिक्री एक सहमति डिक्री बन जाती है (जिसके खिलाफ अपील का कोई अधिकार नहीं है), किसी पक्ष द्वारा सीमा की याचिका को केवल वापस लेना उस पक्ष को अपीलीय स्तर पर इस प्रश्न को उठाने से नहीं रोकेगा। (13) मकबूल अहमद बनाम ओंकार प्रताप नारायण सिंह (**MANU/PR**/0025/1935:ए. आई. आर. 1935 पी. सी. 85), उनके प्रभुत्व ने पृष्ठ 88 में उल्लेख किया।

> यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस दृष्टिकोण का समर्थन इस तथ्य से किया जाता है कि अधिनियम की धारा 3 आकस्मिक है और न्यायालय का कर्तव्य अधिनियम को सूचना देना और इसे प्रभावी बनाना है, भले ही इसका उल्लेख अभिवचनों में नहीं किया गया हो।

(14) यशवंत देवराव बनाम वालचंद रामचंद (एम. ए. एन. यू./एस. सी./0033/1950:ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 16) में सीमा अधिनियम की धारा 18 के तहत सीमा की याचिका को अपीलीय स्तर पर भी लेने की अनुमति दी गई थी, हालांकि इसे निचली अदालतों में नहीं लिया गया था। मैं (15) कुंडो मल बनाम दौलत राम विद्या प्रकाश (एम. ए. एन. यू./एल. ए./0213/1939

का भी उल्लेख कर सकता हूंःए. आई. आर. 1940 लाह 75), जहां इस बात पर जोर दिया गया था कि सीमा के संबंध में आपत्तियों को माफ नहीं किया जा सकता है, और यदि उन्हें माफ कर दिया जाता है, तो उन्हें पक्षों द्वारा या स्वयं अदालतों द्वारा फिर से लिया जा सकता है। यह सच है कि, वर्तमान मामले में, सीमा के मुद्दे को पूरी तरह से कानून का सवाल नहीं कहा जा सकता है, लेकिन यह कानून और तथ्य का एक मिश्रित सवाल है जो मुख्य रूप से अनुबंध का कथित उल्लंघन होने की सही तारीख का पता लगाने पर निर्भर करता है। यदि यह दूसरी अपील थी, तो तथ्यों पर निष्कर्ष बाध्यकारी होंगे, और सीमा के प्रश्न की जांच केवल कानून के बिंदुओं तक ही सीमित होगी, लेकिन चूंकि खंड पीठ के समक्ष अपील पहली अपील है, इसलिए प्रतिवादी के लिए यह खुला होगा कि वह अदालत से उस तारीख के बारे में अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने के लिए कहे जिस दिन कथित उल्लंघन हुआ था, और फिर यह तय करे कि मुकदमा समय के भीतर लाया गया था या नहीं। यहां तक कि अगर यह इस याचिका में सफल हो जाता है, तो अकेले वादी की अपील को खारिज कर दिया जाएगा, और डिक्री के उस हिस्से को जो प्रतिवादी के खिलाफ है, बाधित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह अंतिमता प्राप्त कर चुका है, जब तक कि, निश्चित रूप से, पीठ की राय नहीं है कि आदेश **XLI** नियम 33, दीवानी प्रक्रिया संहिता, लागू होगी।

12. यदि सीमा की याचिका पर विचार नहीं किया गया था और पक्षों को साक्ष्य का नेतृत्व करने का अवसर नहीं मिला था, तो अपीलीय स्तर पर प्रश्न को लेने से पक्षकारों के लिए पूर्वाग्रह पैदा हो सकता है, जैसा कि (16) बनारसी दास बनाम कांशीराम (एम. ए. एन. यू./एस. सी./0302/1962:ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 1165-कंडिका 15) में उल्लेख किया गया है। लेकिन यहाँ, हालांकि, मुद्दा उठाया गया था, सभी उपलब्ध सबूत दिए गए थे, और तर्क के आधार पर प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता द्वारा याचिका को छोड़ दिया गया था। इसलिए, यदि इस मुद्दे को आदेश **XLI** नियम 22 (1) के तहत अपीलीय स्तर पर उठाने की अनुमति दी जाती है, तो सीमा के मुद्दे पर उपलब्ध साक्ष्य के नेतृत्व के संबंध में वादी के प्रति कोई पूर्वाग्रह पैदा होने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। (17) महिंद्रा लैंड एंड बिल्डिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भूतनाथ बनर्जी (एम. ए. एन. यू./एस. सी./0259/1963:ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1336 कंडिका 9) में, उनके प्रभुत्व/अधिपतियों ने बताया कि यहां तक कि एक पुनरीक्षण न्यायालय भी सीमा अधिनियम की धारा 3 पर भरोसा कर सकता है यदि यह संतुष्ट हो कि निचली अदालतें एक गलत निर्णय पर आ गई हैं।

13. इन कारणों से, मैं खंड पीठ द्वारा हमें संदर्भित दो प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देता हूंः

प्रश्न संख्या 1.प्रतिवादी प्रतिवादी प्रश्न में उल्लिखित परिस्थितियों में आदेश **XLI** नियम 22 (1), दीवानी प्रक्रिया संहिता के आधार पर सीमा की याचिका उठा सकता है, लेकिन केवल उस डिक्री का समर्थन करने के लिए जो उसके पक्ष में है।

प्रश्न संख्या-2 इस प्रश्न को कुछ हद तक गलत तरीके से रखा गया होगा, मेरे इस विचार को ध्यान में रखते हुए कि आदेश **XLI** नियम 22 (1), दीवानी प्रक्रिया संहिता में "डिक्री" शब्द का अर्थ निचली अदालत की पूरी डिक्री नहीं है, बल्कि डिक्री का केवल वह हिस्सा है जो अपील के तहत है। प्रतिवादी निचली अदालत द्वारा उसके खिलाफ तय किए गए किसी भी आधार पर उस डिक्री का समर्थन कर सकता था, भले ही निचली अदालत द्वारा उस आधार की स्वीकृति का प्रभाव मुकदमे को खारिज करने पर पड़ता। प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) का निचली अदालत की डिक्री के उस हिस्से को चुनौती देने का अधिकार जो उसके खिलाफ है, अपील या प्रति-आपत्ति दायर करने में उसकी विफलता के कारण बाधित किया जा सकता है, और इस प्रकार डिक्री के उस हिस्से को चुनौती देने का सवाल आदेश **XLI** नियम 22 (1) की शर्तों के भीतर उत्पन्न नहीं होता है। हम उन परिस्थितियों में आदेश **XLI** नियम 33, दीवानी प्रक्रिया संहिता के लागू होने के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं।

मामला अब निपटारे के लिए खंड पीठ को वापस भेजा जाए। लागत परिणाम का पालन करेगी।

उदय सिन्हा, न्यायमूर्ति

मैं सहमत हूँ।

तारकेश्वर नाथ, न्यायमूर्ति

मैं सहमत हूँ।

खण्डन (डिस्क्लेमर):- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।